नवीन

हिमालयी स्वदेशी सब्जी-तरड़ी का उत्पादन

निखिल ठाकुर[1], **जसदीप कौर**[2] और **दीपा शर्मा**[1]

हिमाचल प्रदेश जैव विविधता से समृद्ध राज्य है, जहाँ अनेक जंगली फल एवं सब्जियाँ पाई जाती हैं। ये न केवल ग्रामीण एवं गरीब वर्ग की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, बल्कि उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन सब्जियों की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अच्छी मांग होने के बावजूद, अधिकांश उत्पाद वर्तमान में स्थानीय बाजारों तक ही सीमित हैं। इन्हीं पारंपरिक सब्जियों में से एक महत्वपूर्ण भूमिगत सब्जी "तरड़ी" है। हिमाचल प्रदेश में तरड़ी एक लोकप्रिय कंदीय सब्जी है, जिसका उपयोग खाद्य एवं औषधीय दोनों दृष्टियों से किया जाता है। इसके पोषक गुणों और औषधीय महत्व को देखते हुए इसकी खेती को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके लिए उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के विकास, वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों के प्रसार तथा उत्पाद के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

ग्रामीण समुदायों के आहार में पारंपरिक सब्जियाँ विविधता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये न केवल पोषण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी हैं, बल्कि स्थानीय सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों की स्थिरता को भी बनाए रखने में सहायक हैं। वर्तमान समय में स्वस्थ आहार के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण, विशेषकर विकासशील देशों के बाजारों में जैविक एवं प्राकृतिक खाद्य उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है।

लघु एवं सीमांत किसानों के लिए कम अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में अतिरिक्त आय अर्जित करने हेतु तरड़ी जैसी पारंपरिक सब्जियों को व्यावसायिक फसलों के साथ अंतरफसल के रूप में उगाया जा सकता है। यह फसल कम लागत में तैयार होती है तथा अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्रदान करती है। कम ज्ञात किंतु आर्थिक रूप से संभावनाशील सब्जियों में तरड़ी का स्थान महत्वपूर्ण है। इसकी खेती वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में की जा रही है। उचित तकनीकी मार्गदर्शन और बाजार से जुड़ाव के माध्यम से इसे एक लाभकारी नकदी फसल के रूप में विकसित किया जा सकता है।

तरड़ी के वानस्पतिक नाम को लेकर अभी भी पर्याप्त भ्रम बना हुआ है, क्योंकि इस पौधे पर विस्तृत एवं मानकीकृत वनस्पति वर्गीकरण संबंधी अध्ययन सीमित हैं। तथापि, इसकी आकृतिक संरचना (मॉर्फोलॉजी) एवं जीवन चक्र के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि यह पौधा डायोस्कोरिया वंश से संबंधित है। विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा इसे अलग-अलग वैज्ञानिक नाम दिए गए हैं, जिनमें प्रमुख रूप से डायोस्कोरिया बेलोफायला, डायोस्कोरिया अलाटा, डायोस्कोरिया न्यूम्मुलैरिफोलिया तथा डायोस्कोरिया ग्लाब्रा शामिल हैं।

तरड़ी डायोस्कोरेसी कुल की सदस्य है और इसे सामान्यत: "हिमालयन रतालू" के नाम से भी जाना जाता है। इस पौधे की पत्तियाँ हृदयाकार (दिल के आकार की) होती हैं, जो इसकी पहचान का प्रमुख लक्षण हैं।

प्राकृतिक अवस्था में तरड़ी प्राय: वनों में वृक्षों की छाया के नीचे तथा ढलान वाली भूमि पर उगती है। यह पौधा छायादार वातावरण और जैविक पदार्थ से भरपूर, भुरभुरी एवं अच्छी जल निकास वाली मिट्टी में बेहतर वृद्धि करता है। इन विशेषताओं के कारण यह पर्वतीय एवं वन क्षेत्र की पारिस्थितिकी के अनुकूल एक महत्वपूर्ण कंदीय फसल के रूप में उभर रही है।

औषधीय महत्व

तरड़ी का उपयोग विभिन्न रोग अवस्थाओं जैसे अल्सर, दर्दयुक्त घाव, ऐंठन (स्पैज़्म), पेचिश, मधुमेह तथा कैंसर जैसी गंभीर स्थितियों में पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता रहा है। इसके कंदों में पाए जाने वाले जैव-सक्रिय घटक एंटीऑक्सीडेंट, एंटीइंफ्लेमेटरी, एंटीबैक्टीरियल एवं रोग प्रतिरोधक गतिविधियाँ प्रदर्शित करते हैं। इसके कंदों का रस गर्म पानी के साथ सेवन करने से बुखार, मलेरिया, सिरदर्द एवं पेचिश जैसी समस्याओं में राहत मिलती है। यही कारण है कि पहाड़ी क्षेत्रों में इसे एक महत्वपूर्ण औषधीय कंदीय फसल के रूप में माना जाता है।

खाद्य उपयोग

तरड़ी के कंद अंदर से भुरभुरे, दूधिया सफेद एवं हल्के चिपचिपे होते हैं। कच्ची

विभिन्न आकार में तरड़ी कंद

[1]डॉ यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश); [2]चौधरी सरवण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

तरड़ी के पत्ते

अवस्था में ये कुरकुरे होते हैं तथा इनमें स्टार्चयुक्त स्वाद पाया जाता है। कंदों का सेवन मुख्य रूप से भूनकर अथवा तलकर किया जाता है। इनका उपयोग सूखी सब्जी के साथ-साथ करी बनाने में भी किया जाता है।

तरड़ी के कंदों से अनेक पारंपरिक व्यंजन तैयार किए जाते हैं, जैसे कचौरी, बड़ियाँ, परांठा तथा अन्य स्थानीय व्यंजन। ऑफ-सीजन उपयोग के लिए इन्हें संरक्षित करने हेतु अचार भी बनाया जाता है, जिससे इनकी उपलब्धता वर्ष भर बनी रहती है।

प्रवर्धन

तरड़ी का प्रसारण मुख्य रूप से एरियल बल्बिल (हवाई कंदिकाएँ) अथवा भूमिगत कंदों के माध्यम से किया जाता है। इसकी कटाई टिकाऊ पद्धति से करना अत्यंत आवश्यक है, जिससे प्राकृतिक आवास चक्र बना रहे तथा भविष्य में पुनर्जनन संभव हो सके।

ग्रामीण समुदाय इस कार्य में काफी दक्ष हैं। वे वनों में प्रकृति को प्रभावित किए बिना चयनात्मक कटाई करते हैं तथा पुनर्जनन को प्रोत्साहित करते हैं। सामान्यत: कंदों को मूल अंकुर से कुछ सेंटीमीटर ऊपर से काटा जाता है और शेष भाग को बेल के साथ पुन: उगने के लिए छोड़ दिया जाता है, जिससे अगले मौसम में नई वृद्धि सुनिश्चित होती है।

मिट्टी के घड़ों में तरड़ी

उत्पादन तकनीक

तरड़ी की खेती अगस्त-सितंबर माह के दौरान लताओं पर लगने वाली कंदिका (एरियल बल्बिल) अथवा भूमिगत कंदों के माध्यम से आसानी से की जा सकती है। इसकी खेती की एक प्रमुख चुनौती यह है कि इसके कंद मिट्टी में अत्यधिक गहराई तक विकसित होते हैं, जिससे खुदाई एवं कटाई श्रमसाध्य हो जाती है।

इसी समस्या के समाधान के लिए तरड़ी को कंटेनर, कंक्रीट के गमले, मिट्टी के घड़े अथवा ड्रमों में उगाया जा सकता है। सामान्य परिस्थितियों में इसके कंद मिट्टी में लगभग 2-3 मीटर तक गहराई में प्रवेश कर सकते हैं। किंतु खेती के समय स्लेट या सपाट पत्थर की परत लगभग 40-50 सें.मी. गहराई पर बिछाने से कंदों की नीचे की ओर वृद्धि सीमित हो जाती है, जिससे कटाई के समय कंदों को आसानी से निकाला जा सकता है।

बढ़ते हुए पौधों को सहारा देने के लिए स्टेकिंग विधि अपनाई जा सकती है अथवा उन्हें जमीन पर फैलने दिया जा सकता है। हालांकि, स्टेकिंग विधि अपनाने से प्रकाश का बेहतर उपयोग होता है, वायु संचार बढ़ता है तथा उपज में वृद्धि होती है। इस विधि में बेलों को खड़े खंभों या तार के ढाँचे से बाँध दिया जाता है, जिससे पौधों को उचित सहारा मिलता है और उनकी वृद्धि संतुलित बनी रहती है।

कटाई

तरड़ी के कंदों का आकार एवं आकृति पौधे की आयु तथा मिट्टी की बनावट के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। सामान्यत: इसकी कटाई बुआई के लगभग 3 वर्ष बाद फावड़े अथवा कुदाल की सहायता से की जाती है। औसतन कंदों का व्यास लगभग 8 सें.मी. तथा मोटाई लगभग 5 सें.मी. पाई जाती है।

जमीन की सतह से लगभग 50 सें. मी. गहराई पर पहुँचने के बाद कंदों का मोटा होना प्रारंभ हो जाता है। इसकी जड़ें सामान्यत: मिट्टी में सीधी नीचे की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति रखती हैं और यदि किसी कठोर परत या पत्थर से अवरोध न हो, तो ये 2-3 मीटर तक गहराई में प्रवेश कर सकती हैं। इस विशेष वृद्धि प्रवृत्ति के कारण तरड़ी की खुदाई श्रमसाध्य, शारीरिक रूप से कठिन तथा अपेक्षाकृत अधिक लागत वाली होती है। वर्तमान में प्राय: सर्दियों के मौसम में स्थानीय ग्रामीण समुदायों द्वारा वनों से इसकी कटाई की जाती है, जो पारंपरिक अनुभव एवं कौशल पर आधारित होती है।

तरड़ी के कंद

भंडारण

यद्यपि तरड़ी के कंद अपेक्षाकृत कम खराब होने वाले होते हैं, फिर भी सफल भंडारण के लिए उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। कंदों के सुरक्षित भंडारण की दक्षता कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें किस्म, सापेक्षिक आर्द्रता, तापमान तथा कंदों की भौतिक अवस्था प्रमुख हैं। पारंपरिक भंडारण विधियाँ स्थानीय पारिस्थितिकी एवं रतालू की उपज प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। सामान्यत: कंदों को फर्श पर ढेर बनाकर या शेड के भीतर शेल्फ पर रखा जाता है। कुछ क्षेत्रों में गोलाकार या आयताकार गड्ढे खोदकर उनमें कंदों को भर दिया जाता है तथा ऊपर से रेत या सूखी मिट्टी की परत डालकर ढक दिया जाता है, जिससे नमी संतुलन बना रहता है और सड़न की संभावना कम होती है। भंडारण से पूर्व कंदों का उचित उपचार किया जाना चाहिए तथा केवल स्वस्थ एवं रोग मुक्त कंदों का ही चयन भंडारण के लिए करना चाहिए। भंडारण अवधि के दौरान पर्याप्त वायु संचार सुनिश्चित करना, कंदों का नियमित निरीक्षण करना तथा सड़े या संक्रमित कंदों को समय रहते अलग करना अनिवार्य है।

उपज

तरड़ी की उपज पौधे की आयु के साथ क्रमश: बढ़ती जाती है। सामान्यत: रोपण के एक वर्ष बाद प्रति पौधा लगभग 3-4 कि.ग्रा. कंद उत्पादन प्राप्त होता है। वहीं, पौधे की आयु पाँच वर्ष होने पर उपज बढ़कर लगभग 8-10 कि.ग्रा. प्रति पौधा तक पहुँच सकती है।